

समयसार गाथा ४४। चार बोल चले हैं। है न! आठ बोल में चार बोल का उत्तर दिया। पाँचवाँ, समस्त जगत को पुण्य-पापरूप व्याप्त करता कर्म-विपाक भी जीव नहीं है.. कर्म का विपाक पुण्य-पापरूप के भाव से व्याप्त, वह जीव नहीं है। आहाहा! क्योंकि शुभाशुभभाव से अन्य पृथक्.. शुभ और अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, कमाना इत्यादि भाव पाप; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि पुण्य - इन शुभाशुभभाव से अन्य पृथक् चैतन्यस्वभावरूप जीव,.. यह कर्ता की व्याख्या है। जो शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे वस्तुतः कर्म का विपाक है। यह ३२ (गाथा) में आ गया है। कर्म भावक है और शुभ-अशुभभाव उस भावक का भाव्य है। उस कर्म के विपाक का भाव है। चैतन्य का विपाक वह नहीं होता। आहाहा! शुभ-अशुभभाव वह कर्म के भावक का भाव, वह कर्म का विपाक है, आहाहा! वह जीव नहीं है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि और भेदज्ञानियों के द्वारा.. इन शुभाशुभभाव से पृथक् आत्मा अनुभव में आता है। आहाहा!

शुभाशुभभाव से अन्य पृथक्.. भाव से अन्य पृथक्.. आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! सूक्ष्म ज्ञान का उपयोग होकर जो स्वभाव के सन्मुख ढला है, ऐसे भेदज्ञानियों

द्वारा, इन शुभाशुभभाव से अन्य पृथक्.. आहाहा! अन्य पृथक् चैतन्यस्वभावरूप जीव,.. ये शुभ-अशुभभाव, वह कर्म के विपाक का कार्य है; जीव का नहीं। यह कर्ता-कर्म का कर्म विपाक है उसका-उस कर्ता का कार्य है। यहाँ अज्ञानी ने ऐसा कहा था न कि शुभ-अशुभभाव हमारा कार्य है, उससे पृथक् जीव हमें तो दिखाई नहीं देता। आहाहा! कठिन बात बहुत, भाई! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसे पुण्य और पाप के शुभाशुभभाव से अन्य जीव हैं, वह जीव है। उसे भेदज्ञानी, धर्मी जीव, समकिति जीव, उस शुभाशुभभाव से अन्य आत्मा है.. है ? भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है,.. स्वयं प्राप्त, स्वयं से प्राप्त है। वह शुभभाव था, इसलिए उसका अभाव करके (प्राप्त) हुआ है, इसलिए स्वयं प्राप्त हुआ है। यह ऐसा कहते हैं न कि भाई! दया, दान, व्रतादि के आचरण का भाव हो, उस भाव से शुद्धता प्रगट होती है। वह यहाँ इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं है, भाई! तुझे पता नहीं है। जिससे भिन्न अनुभव करना है, उससे वह होगा ? आहाहा!

अरेरे! इसे जन्म-मरणरहित होने का पंथ कोई अलौकिक है, प्रभु! आहाहा! यह शुभ और अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, जो जैनधर्म नहीं है, आहाहा! - ऐसे भाव से पृथक् स्वयं अपने ज्ञान की पर्याय द्वारा अनुभव में आता है। आहाहा! इसलिए वह शुभाशुभभाव, (वह) जीव और जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा! यह कर्तापने की व्याख्या है। शुभाशुभभाव, वह आत्मा का कर्तव्य है, और आत्मा कर्ता है - ऐसा नहीं है। शुभाशुभभाव, भावककर्म कर्ता है और उसका वह कार्य है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान अन्तरस्वरूप में ढलती है, वह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न पड़कर ढलती है, वह पुण्य का शुभभाव को साथ रखकर अन्दर में जाती है या उसकी मदद से अन्दर जाती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई!

यह किसका अर्थ हुआ ? यह स्वयं उपलभ्यमान है, आहाहा! अर्थात् वे स्वयं.. भेदज्ञानी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव, स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। 'स्वयं' का अर्थ प्रत्यक्ष किया है। आहाहा! ज्ञानानन्द भगवान आत्मा, उस ज्ञानानन्द की ज्ञान की पर्याय स्वयं प्रत्यक्ष होकर उसे अनुभव करती है। आहाहा! इसका नाम आत्मा जाना और आत्मा माना, उसने आत्मा का अनुभव किया। ऐसी बात सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! यह पाँचवाँ बोल हुआ।

(छठवाँ बोल) अब भोक्ता की बात है। साता-असातारूप से व्याप्त समस्त तीव्र-मन्दतारूप गुणों के द्वारा भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव.. है वह। आहाहा! कल्पना हुई कि यह सुख, यह संयोग अनुकूल है, इसलिए मैं सुखी हूँ, प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दुःखी हूँ - ऐसी जो कल्पना, वह सुख-दुःख का जो अनुभव, वह जीव का नहीं है। आहाहा! वह जीव उसका भोक्ता नहीं है। तीव्र-मन्दतारूप गुणों के द्वारा भेदरूप होनेवाला.. यह तो राग का मन्दभाव हो या तीव्र हो, परन्तु उसका भोक्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! राग की मन्दता का सुखरूप वेदन कल्पना का या तीव्र रागरूपी दुःख का वेदन, वह जीव का नहीं है। आहाहा! उस तीव्र-मन्दतारूप भेद से होनेवाला कर्म का अनुभव वह है। आहाहा! हम सुखी हैं, पैसे-टके से अनुकूलता से हम सुखी हैं-ऐसा माननेवाले, उस कर्म के विपाक को स्वयं अनुभव करते हैं। आहाहा! हम दुःखी हैं, पैसा न मिले, यह न मिले.. आहाहा!

यहाँ आया था न, एक व्यक्ति मन्दसौर का, मैं तीर्थकर हूँ.. नाम भूल गये। पाटनीजी! यहाँ आया था। व्याख्यान सुना, पत्र दिया था पहले, महीने पहले, मैं तीर्थकर हूँ, केवली हूँ, मुझे चार घातिकर्म नाश हुए हैं, भगवान को भी चार घातिकर्म नाश हुए थे परन्तु उनके पास पैसे नहीं थे, वैसे ही मेरे पास पैसे नहीं हैं। अरे रे! आहाहा! यह दुःख का वेदन है। निर्धनता का अनादि से। यह वेदन तो कर्म के पाक का वेदन है। कहो, अब वह कहे कि मुझे घातिकर्म का नाश हुआ है और मैं सब बताऊँ ऐसा कि.. फिर तो मैंने कहा बापू! ये क्या है भाई! दृष्टि विपरीत हो गयी बहुत भाई! वह सुने (नहीं) वापस, यहाँ तो मध्यस्थ से कहा जाता है। किसी का अनादर नहीं है। वापस खड़ा होकर ठीक से पैर लगा। अरे भाई! दुःख का यह निर्धनता और साधन नहीं है, उसका वेदन-दुःख का, वह तो कर्म का वेदन है। यह मिथ्यादृष्टि उसे वेदता है। सम्यग्दृष्टि जीव, भेदज्ञानी जीव, इस राग के वेदन से भिन्न पड़ा हुआ भगवान, आहाहा! उसे स्वयं वेदते हुए वह उससे पृथक् रह जाता है - राग का वेदन पृथक् रह जाता है; आत्मा में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें अब यह तो.. अरे रे! एक तो बाह्य की प्रवृत्ति के कारण निवृत्ति नहीं मिलती.. आहाहा! और बाह्य की प्रवृत्ति छोड़े तथा बाह्य से निवृत्ति ले तो अन्दर के पुण्य-पाप के परिणाम से निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह अज्ञानी ऐसा कहता था कि हमारे तो कर्म का विपाक ऐसा जो शुभ-अशुभभाव, वही हमारा वेदन है और वही हम जीव हैं। आहाहा! उसका उत्तर आचार्य ने यहाँ दिया है, भाई! तुझे पता नहीं है। यह सुख-दुःख का वेदन, यह तो जड़ का वेदन है। आहाहा! प्रभु! तू इससे भिन्न है न? आहाहा! यह भेदज्ञानी द्वारा.. आहाहा! सुख-दुःख से पृथक्। उस वेदन का है यह। कर्म के निमित्त से पैसे हुए पाँच-पचीस करोड़ या धूल करोड़, हम सुखी हैं, वह मूढ़ जीव, राग को सुख के नाम से वेदन करता है.. आहाहा! और वह ऐसा कहता है कि सुख-दुःख के वेदन से पृथक् जीव हमें तो कहीं दिखता नहीं। कहाँ से दिखे? भाई! तेरी दृष्टि ही पर्याय पर, सुख-दुःख के वेदन पर पड़ी है। आहाहा! भगवान वहाँ है नहीं; आहाहा! भगवान आत्मा तो अन्दर सुख-दुःख के वेदन से भिन्न जाति अन्दर है - ऐसी बातें अब। हैं?

**श्रोता :** अलौकिक बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी बात है, भाई! यह कर्म का अनुभव-सुख-दुःख का (अनुभव) हम सुखी हैं.. कहा था न, एक बार यहाँ, वे वढ़वान के नानालालभाई और वे सब पैसेवाले, करोड़पति पैसेवाले, उनका समधी, यह व्याख्यान चलता था स्वाध्याय मन्दिर में.. हमारे समधी सुखी हैं। मैंने कहा, भाई! सुखी की व्याख्या क्या? दो-पाँच लाख, पचास लाख, करोड़-दो करोड़ मिले, इसलिए सुखी? यह पैसे की ओर लक्ष्य जाता है, वह तो दुःख है और वह दुःख का वेदन है, पैसे का नहीं। आहाहा! और वह वेदन, जड़ का वेदन है; भगवान चैतन्य का नहीं। वह जड़ है, राग है, वह अचेतन है, उसका उसे वेदन है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं साता-असातारूप से व्याप्त समस्त तीव्र-मन्द.. असाता में तीव्र और इसमें-साता में मन्द हो। ऐसे गुणों के द्वारा भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव.. है। भाई! आहाहा! यह तो साता के उदय से प्राप्त सामग्रियाँ, इनमें तुझे सुख भासित होता है, वह तो कर्म के पाक की कल्पना है। आहाहा! उसमें प्रभु आत्मा अन्दर आया नहीं.. आहाहा! और निर्धनता होवे, पाई मिले नहीं, महाकठिनता से माँगकर रोटियाँ खाता हो इत्यादि.. आहाहा! वह भी दुःख का परिणाम, वह कर्म का पाक है; वह जीव का स्वभाव नहीं है। आहाहा!

हमारे बहुत वर्ष पहले एक साधु आये थे, वहाँ पालेज में ऐसी बातें करे। ऐसी सब वैराग्य की। 'कुत्ते के भव में मैंने बीनकर खाये टुकड़े' कुत्ते के भव में, क्योंकि कुछ जोली नहीं मिले, कपड़ा नहीं मिले, पात्र नहीं मिले, लोटा नहीं मिले, वहाँ टुकड़े मिलें। 'कुत्ते के भव में मैंने बीनकर खाये टुकड़े', 'मैंने भूख के पाये भड़का भूदरजी तुमको भूला' - ऐसा बोले उस समय उन्हें तो दूसरा क्या? आहाहा! कहते हैं कि जो भूख का दर्द सहन किया - ऐसा जो दुःख वह तो कर्म का पाप है। आहाहा! समझ में आया?

भेदज्ञानी जीवों ने, आहाहा! उस सुख-दुःख के वेदन से भगवान आत्मा भिन्नस्वरूप से विराजमान है, आहाहा! उसे सुख-दुःख से पृथक्.. आहाहा! अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, आहाहा! इसका अर्थ यह हुआ न कि शुभ-अशुभ का वेदन, वह चैतन्यस्वभाव नहीं है। अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव.. आहाहा! भेदज्ञानियों के द्वारा, इस सुख-दुःख की कल्पना के वेदन से भिन्न पड़े हुए भेदज्ञानी जीवों (के द्वारा) आहाहा! स्वयं उपलभ्यमान है, आहाहा! प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, प्राप्ति है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की खान है, वह जिसके ज्ञान में ज्ञात हुआ, वह सुख-दुःख के वेदन से अन्य पृथक् प्रभु, उसे-चैतन्यस्वभाव को वह अनुभव करता है। आहाहा! भेदज्ञान द्वारा स्वयं प्रत्यक्ष प्राप्त है। आहाहा! ऐसी बात अब! वीतराग-वीतराग मार्ग सूक्ष्म, भाई! तीर्थकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने.. ऊपर कहा था, (कि) तीर्थकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा है कि वह जीव नहीं है। पहला बोल आया था। आहाहा! यह सुख-दुःख का वेदन, वह जीव नहीं है—ऐसा सर्वज्ञ भगवान तीर्थकरदेव ने कहा है। आहाहा!

यह तो एक गाथा उत्तराध्ययन में, बीसवें अध्ययन में ऐसी आती है.. आत्मा, सुख-दुःख का कर्ता है और उनका भोक्ता है—ऐसा आता है। अनाथी मुनि का बीसवाँ अध्ययन है, व्याख्यान हो गये न बहुत वहाँ तो बहुत। उसमें यह बात स्पष्ट है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो आत्मा, कर्ता और भोक्ता, वह अपनी निर्मल शुद्धपर्याय का कर्ता और उसका भोक्ता (है)। विकारी परिणाम का कर्ता-भोक्ता, वह आत्मा नहीं, आहाहा! क्योंकि इस सुख-दुःख की कल्पना के भाव को तो भगवान ने अजीव कहा है। आया था न पहले? आहाहा! है जीव की पर्याय, परन्तु वह कर्म के उदय से हुई, इसलिए उसे अजीव कहा है। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय शान्ति का भरा हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का भरा हुआ प्रभु—ऐसे जीव का, आत्म का; जिसे इस सुख-दुःख के वेदन से अन्य भगवान वेदन में आया, आहाहा! वह प्रत्यक्ष आनन्द और शान्ति को वेदता है, वह सुख-दुःख को वेदता नहीं है। आहाहा! दूसरी जगह फिर ऐसा भी आवे; यहाँ! तो यह भेद मात्र पर से किया है, बाकी धर्मी जीव भी अपने आनन्द को भी वेदता है और अभी किञ्चित् बाकी रहा है, उस राग को वेदता है अर्थात् दुःख को वेदता है। यहाँ तो दुःख, वह कर्म के विपाक का फल गिनकर, जीव से भिन्न गिनकर, उसे वेदता नहीं—इतना सिद्ध करना है। यह जीव-अजीव अधिकार है न? आहाहा! परन्तु फिर इसमें से एकान्त खींच ले कि धर्मी-आत्मज्ञानी को पर्याय में दुःख होता ही नहीं-ऐसा नहीं है। यह तो जीव-अजीव की भिन्नता बतलाते हुए, उस अजीव का वेदन उसे नहीं है; परन्तु जब धर्मी जीव है, राग और राग के वेदन से भिन्न पड़े हुए का वेदन है, उसके साथ अभी थोड़ी राग की आसक्ति है, उसका वेदन दुःख का है। आहाहा! अब ऐसी बातें! यहाँ पकड़े और वहाँ ऐसा कहे कि नहीं, ऐसा नहीं और वहाँ कहा हो तो वापस यहाँ मिलान न खाये। आहाहा!

किस अपेक्षा से कहा है प्रभु? प्रवचनसार के सैतालीसनय अधिकार में तो उन्होंने यहाँ तक कहा है कि आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का भान हुआ, उसका जिसे ज्ञान और आनन्द वर्तता है, उसे अभी राग और दुःख वर्तता है, उसका वह स्वामी है—अधिष्ठाता है। आहाहा! यहाँ इनकार करते हैं। यह तो जीव-अजीव को भिन्न करने की अपेक्षा बात है। आहाहा! यहाँ तो सुख-दुःख की वेदनदशा, वह जीव की नहीं; अजीव की है—ऐसा कहकर भिन्न किया है। वहाँ आगे सम्यग्दृष्टि हुआ है, भेदज्ञानी है, उसे भी पूर्ण वीतरागता और पूर्णानन्द की दशा नहीं, तब तक आनन्द को भी वेदता है और दुःख जो कर्म का विपाक, पाक यहाँ कहा, आहाहा! ऐसे दुःख को भी वेदता है। रतिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

**श्रोता :** इसमें से सच्चा क्या ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हैं! दोनों सत्य है। यह जड़ और चैतन्य के विपाक को भिन्न बतलाना है और वहाँ भिन्न बतलाये होने पर भी, उसकी पर्याय में जितनी सुख-दुःख की कल्पना होती है, उसका वह वेदन करनेवाला है। भाई मोहनलालजी! ऐसी बात है, भाई! यह क्या हो ?

अरेरे! दुनिया कहीं दुःखी होकर भटक रही है। आहाहा! पागल होकर पर में सुख है—ऐसा मानती है। आहाहा! भगवान तीर्थकर सर्वज्ञदेव तो पुकार करते हैं, हम कहते हैं प्रभु! यह सुख-दुःख की कल्पना जो है, वह अजीब है।

**श्रोता :** वह अपने में से निकल जाता है इसलिए... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका चित्स्वरूप नहीं है न ? इसके द्रव्य-गुण में है वह चीज ? कोई गुण-कोई गुण विकृत हो-ऐसा कोई गुण है ? कोई गुण सुख-दुःख को वेदे—ऐसा कोई गुण है ? पर्याय की व्याख्या जब चले, तब.. प्रवीणभाई! आहाहा! ऐसी बात है। भगवान आत्मा अपार-अपार गुणों का सागर है। वे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चाहे जितने अनन्त करो तो भी जिसके गुण की संख्या का पार नहीं, परन्तु उन सब गुणों में—इतने गुणों में कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार करे; कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार को वेदे। आहाहा! समझ में आया ?

जहाँ शक्ति का अधिकार चला, वहाँ तो सब गुण हैं भगवान आत्मा के; इसलिए उनका परिणामन क्रमसर भी निर्मल ही है। क्रम भी निर्मल है और अक्रम जो गुण हैं, वे भी निर्मल हैं। शक्ति का अधिकार जहाँ चला, वहाँ। विकार का रहना या वेदना या होना, वह उसमें है ही नहीं, क्योंकि भगवान आत्मा में जो शक्तियाँ-गुण हैं... आहाहा! 'मोरबी' के पास है न एक ? विहार करके गये थे न उस दिन! वहाँ एक शक्ति का बड़ा मन्दिर है। शक्ति को देवल, अन्यमती का। मोरबी के पास सनाला है। दलीचन्दभाई के भाई की बहू का वहाँ मकान है। फिर आहार करके मैं घूमने निकला, वहाँ वह शक्ति का मन्दिर था, वहाँ गया। वे बेचारे बाबा (बोले) पधारो... पधारो। मैंने कहा—भाई! यह शक्ति नहीं, वास्तविक शक्ति देवी भी यह नहीं। अन्तर में ज्ञान-दर्शन आदि शक्ति, वही देवी है। वे ऐसा कहते थे कि ईश्वर को शक्ति बिना भी चलता नहीं। ऐ पोपटभाई! यह तुम्हारी बात चलती है, यह पूर्व की सब। ईश्वर को शक्ति के बिना चलता नहीं, वह यह हमारी शक्ति है, कहते हैं। (हमने) कहा-यह नहीं। यह (आत्मा) ईश्वर-भगवान है, उसके गुणरूपी शक्ति के बिना उसे चलता नहीं। ऐसी बात है, कहा। भाई! वहाँ मकान है मोरबी के पास सनाला है या कोई। दलीचन्दभाई के भाई की बहू का मकान है, वहाँ उतरे थे। आहाहा!

यहाँ कहना है, प्रभु आत्मा है, उसमें अनन्त-अनन्त शक्तिरूप गुण है, परन्तु कोई गुण विकृतरूप से परिणमें-ऐसा कोई गुण नहीं है। वह तो पर्याय में पर के आधीन होकर विकृत होता है। उस गुण के आधीन नहीं होता, इसलिए होता है। अब उसके भी प्रकार दो—कि जब यह राग और दुःख का वेदन अजीव कहकर, भेदज्ञानियों को वह नहीं, तब उसे जीव के सुख-दुःख का, आत्मा के सुख का वेदन है—यह सिद्ध करना है; और जब नय का अधिकार चले, तब तो पर्याय में जितना अन्दर समकिति को ज्ञानी.. आहाहा! को भी विषय-वासना आवे, वह दुःख है। दया, दान, भक्ति के परिणाम आवें, वे दुःख हैं, आहाहा! और उस दुःख को तथा आनन्द को दोनों को, एक पर्याय में दो भाग, दोनों को वेदता है। आहाहा! ऐसी बात प्रभु! वीतराग के सिवाय कहीं मिले-ऐसी नहीं है। अभी तो वीतराग के बाड़े में भी खबर नहीं पड़ती। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, इस सुख-दुःख से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव.. इससे—सुख-दुःख की कल्पना जो है, वह कर्म के पाक का पाक गिनकर, उससे अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है। स्वयं का अर्थ स्वयं उसे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। स्वयं का अर्थ यह किया। आहाहा! यह सुख-दुःख की जो कल्पना—हम सुखी हैं, हम अभी हैरान-हैरान दुःखी हैं—ऐसा कहते हैं न कितने ही। दो-चार वर्ष से घर में एक के बाद एक बीमार पड़ता हो; कोई लड़का बीमार पड़कर उठे, वहाँ बहू-बहू बीमार होकर उठे, वहाँ स्वयं बीमार पड़े—ऐसा क्रम से पाँच वर्ष से पलंग खाली नहीं होता, अभी हैरान-हैरान हो गये - ऐसा कहते हैं।

किन्तु यह हैरान अर्थात् क्या? यह तो दुःख की कल्पना में हैरान हो गया है। आहाहा! हम अभी दुःखी है, दुःखी हैं; आहाहा! कोई हमें मदद करो, हम दुःखी हैं—ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि दुःखी है, वह पर्याय विकृत है, इससे यहाँ उसे अजीव कही। भगवान ने उसे अजीव कहीं; उससे अन्य-भिन्न चैतन्यस्वभाव, भेदज्ञानी द्वारा अनुभव किया जाता है। आहाहा!

**श्रोता :** उसके साथ इसका अनुभव तो है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह है, परन्तु अभी यहाँ भिन्न किया है, उसमें गिनना नहीं; परन्तु



जब इसकी पर्याय इसकी है—ऐसा जब कहना है.. वह सुख-दुःख की पर्याय भी है तो जीव की न ? वह कहीं जड़ की और जड़ से हुई नहीं। आहाहा ! तब उसे ऐसा कहा कि जितने नयों के सुख-दुःख कर्ता, सुख-दुःख का भोक्ता, उन सबका स्वामी/अधिष्ठाता तो प्रभु स्वयं है; कर्म के कारण नहीं। आहाहा ! यह ज्ञानप्रधान कथन की शैली में ऐसा आता है; दृष्टिप्रधान शैली में, वह वेदन आत्मा का नहीं—ऐसा आता है। आहाहा ! क्या हो ? भगवान परमात्मा जिनेश्वरदेव द्वारा कथित अपूर्व मार्ग है, भाई ! अरे ! यह सत्य बात सुनने को मिले नहीं, वह सत्य की शरण में कब जाए ? आहाहा ! यह छठवाँ बोल हुआ। आहाहा !

यह शरीर-वाणी-मन तो अजीव है, यह तो स्पष्ट बात है। यह मिट्टी है, वह अजीव-जड़-धूल है; वाणी धूल-जड़ है, कर्म जड़ है, परन्तु यहाँ तो पुण्य-पाप का वेदन है, वह जड़ है। आहाहा ! चैतन्यस्वभाव की जाति नहीं, इस अपेक्षा से। आहाहा ! ऐसी बात है।

सातवाँ बोल—**श्रीखण्ड की भाँति उभयात्मकरूप से मिले हुए आत्मा और कर्म दोनों मिलकर भी जीव नहीं है..** यह कहते हैं कि कर्म और आत्मा दोनों मिलकर आत्मा है, क्योंकि कर्म के बिना किसी दिन रहा नहीं; इसलिए कर्म और आत्मा दोनों मिलकर जीव है.. आहाहा !—ऐसा अज्ञानी कहता है। ऐसे यहाँ श्रीखण्ड में जैसे दही और शक्कर उभयात्मकरूप से मिले हुए, वैसे आत्मा और कर्म दोनों मिले हुए भी जीव नहीं है। शक्कर, वह शक्कर है और दही, वह दही; दोनों भिन्न चीज है। इसी प्रकार भगवान आत्मा शक्कर के समान आनन्दकन्द प्रभु भिन्न है.. आहाहा ! और सुख-दुःख की जो यह वेदनदशा अथवा कर्म का फल, वह सब जड़ है; दोनों एक नहीं हैं। दही और खाँड-शक्कर एक नहीं है। श्रीखण्ड में कहा जाता है कि दोनों एक हैं, परन्तु एक नहीं है। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यघन अनाकुल आनन्द का स्वरूप, वह भिन्न है और कर्म का स्वरूप अत्यन्त भिन्न है। जैसे वह खट्टा दही भिन्न है और मीठी शक्कर भिन्न है; इसी तरह भगवान मीठा-आनन्द का नाथ, वह भिन्न है और कर्म, वह दही की भाँति खटाश है, वह भिन्न है। अरे ! ऐसी बात ! यह किसलिए कहा ? हमारे बाँधे हुए कर्म हमें भोगना पड़ें—ऐसा कहते हैं न ? हमने बाँधे, वैसे भोगेंगे, परन्तु वे तूने बाँधे ही नहीं और उनका भोगनेवाला भी तू नहीं।

यह आता है न ? स्थानकवासी में व्याख्यान शुरु करे, तब यह बोलते हैं—बाँधे कर्म भोगने पड़ें—ऐसा कुछ बोलते हैं। हम भूल गये। हम भी बोलते थे। 'कर्म से राजा, कर्म से

रंक; कर्म ने डाला आडा अंक' ऐई! स्थानकवासी में ऐसा बोलते (थे), व्याख्यान के प्रारम्भ में पाँच मिनट ऐसी स्तुति करे। अब यह ऐसा कि मानो.. अब सब भूल गये।

कर्म के कारण यह सब होता है, कर्म के कारण यह सब होता है, तत्त्व की बात ही नहीं मिलती। यह स्तुति पहले, व्याख्यान शुरू करे न, (तब) पाँच मिनट पहले ऐसी स्तुति करे। यहाँ कहते हैं—कर्म और आत्मा अत्यन्त भिन्न चीज है। जैसे खाँड और दही भिन्न हैं, वैसे कर्म जो है, वह जहर का वृक्ष है। यह आगे आता है न, १४८ प्रकृति, जहर का वृक्ष और भगवान, अमृत का वृक्ष है। आहाहा! आहाहा! नीम इतना बड़ा, देखो! परन्तु निम्बौली इतनी छोटी होती है। हैं! और काशीफल, अधमण-अधमण के काशीफल होते हैं न काशीफल? उसकी बेल पतली-छोटी होती है, काशीफल इतना (बड़ा) पकता है। आहाहा! नारियल लो! नारियली ऐसी लम्बी-लम्बी, ऊपर ऐसे नारियल पकें, सौ-दौ सौ अन्दर मीठे; आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा नारियली के समान हैं, उसकी पर्याय में तो आनन्द पकता है।

**श्रोता :** यह श्रीमद् में आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो होगा, परन्तु अपने अभी यहाँ की बात है। वह तो नारियली है-ऐसा कहते। हमारे तो पूरी नारियली है, इतना कहा था। यह नहीं, ऐसा। ऐसा कहे कि लोगों ने नारियल की महिमा की है, परन्तु हमारे पास तो पूरी नारियली है, पूरा आत्मा है-मूल तो यह कहना है। इस बात का पता है।

यह कहते हैं कि आत्मा में जो सुख-दुःख की कल्पना हो, वह कर्म है और आत्मा, दोनों शामिल है-ऐसा नहीं है, आहाहा! क्योंकि वह जीव नहीं है, **क्योंकि सम्पूर्णतया.. सम्पूर्णरूप से कर्मों से भिन्न.. सम्पूर्ण कर्म-आठ कर्म से अत्यन्त भिन्न।** आहाहा! भगवान आत्मद्रव्य में आठ कर्म के द्रव्य का अभाव है। भगवान आत्मद्रव्य स्वरूप है, आहाहा! आवे ऐसा वापस गोम्मटसार में कि इतने आठ कर्म, जीव को होते हैं, इसको सात होते हैं और इसको छह होते हैं, छठवें में छह बँधते हैं, पाँचवें और चौथे में सात-आठ बँधते हैं, आयुष्य सहित। यहाँ कहते हैं प्रभु, सुन! एक बार सुन! किस अपेक्षा से? वह तो साथे में थे, इतना बतलाया; आहाहा! वरना इन आठ कर्मों से भिन्न, पूरा भिन्न, सम्पूर्णरूप से

कर्मों से भिन्न.. आहाहा! चैतन्यसत्तास्वरूप भगवान, इन आठों ही कर्मों के स्वभाव के भाव से अभावस्वरूप है। आहाहा! इस शक्कर का स्वाद, श्रीखण्ड में दही के स्वभाव के स्वाद से बिल्कुल भिन्न / पृथक् है। आहाहा! समझ में आया? ये मिले हुए जीव नहीं हैं—ऐसा भगवान ने कहा है। यह तो पहले आ गया है।

**क्योंकि सम्पूर्णतया कर्मों से भिन्न..** पूर्ण-पूर्ण कर्म से-समस्त कर्मों से भिन्न, आहाहा! भगवान चैतन्यतत्त्व, चैतन्यस्वभावरूप भगवान तो आठ कर्मों से अत्यन्त भिन्न, ऐसा **अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव..** कर्म से अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, आहाहा! **भेदज्ञानियों के द्वारा..** देखो! यहाँ तो नीचे सम्यग्दर्शन में भी आठ कर्मों से भिन्न आत्मा ज्ञात होता है - ऐसा कहते हैं, आहाहा! क्योंकि जहाँ ज्ञान की पर्याय जहाँ स्वसन्मुख ढली-झुकी, तब तो आठों ही कर्मों का इसकी पर्याय में तो अभाव है; द्रव्य में तो अभाव है, आहाहा! द्रव्य-गुण में तो कभी आवरण नहीं; उसे-द्रव्य को तो कर्म का सम्बन्ध भी नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय में जो सम्बन्ध है, निमित्त-नैमित्तिक ( सम्बन्ध है), वह इस ओर ढलने से वह सम्पूर्ण कर्म से भिन्न भगवान है। आहाहा!

ऐसा उपदेश अब किस प्रकार का यह! कहाँ से आया ऐसा? जैनधर्म का ऐसा स्वरूप होगा? कहते हैं। वह तो हम सुनते थे, अपवास करना और यह करना, व्रत करने का। आहा! वहाँ कहीं अपवास हुआ है, कहीं जमशेदपुर, समाचारपत्र में आया था न? कुछ पैसा खर्च किया था भाई ने, प्रफुल्ल, नरभेराम का है न? कहीं बेचारे को पता नहीं पड़ता। यह तो सब उसको भी माने साईबाबा (को)। अरे रे! बेचारा क्या करे? कुछ पता नहीं पड़ता और सब उसमें भाग लें। उसकी माँ को तो यहाँ का पूरा प्रेम था। यहाँ हेमकुँवरबेन, पैसे इतने दिये, अमुक किया, भाग लिया। अरे रे! यहाँ कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही! यह पैसा दिया, वह तुझसे अलग चीज हुई, परन्तु उसमें जो राग हुआ, उससे भी तू भिन्न है। आहाहा! ऐसा भेदज्ञानी द्वारा प्रत्यक्ष उपलभ्यमान है। उपलभ्यमान अर्थात्? प्राप्त होने के योग्य ही है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह सातवाँ बोल हुआ।

आठवाँ! है! आठ कहे, आठ! **अर्थक्रिया में समर्थ कर्म का संयोग..** आठों ही

कर्म का संयोग। ऐसा कि आठ कर्म का संयोग, वही आत्मा (है)। जैसे कि पलंग चार पाये और चार ईश, आठ का, आता है न? दो लकड़ियाँ और चार, आठ यह - यह पलंग, उसमें सोनेवाला वह अलग है। यहाँ तो कहते हैं यह आठ कर्म है, वही आत्मा है। आहाहा! आहाहा! यह लोग कहते हैं न, यह दयानन्द सरस्वतीवाले? (कि) जीव को मोक्ष होता है और वहाँ से भी वापस आता है और भटकता है, सर्वथा कर्मरहित हो - ऐसा कोई स्वरूप है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। मोक्ष हो जाए, परन्तु साथ में कर्म थोड़े बाकी हैं, इसके बिना तो हो ही नहीं सकता अकेला, फिर वापस अवतार धारण करता है। वे यह ऐसा कहते हैं आठ कर्म रहित आत्मा होता ही नहीं - अज्ञानी ऐसा कहता है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! अरे! जगत् के मतों को आठ में बहुत प्रकार डाल दिये हैं। आहाहा!

**अर्थक्रिया में समर्थ..** अर्थात् पदार्थ की प्रवृत्ति करने में समर्थ। **कर्म का संयोग भी जीव नहीं है..** ऐसा भगवान कहते हैं। **क्योंकि आठ लकड़ियों के संयोग से (—पलंग से) भिन्न पलंग पर सोनेवाले पुरुष की भाँति,..** पलंग में सोता है, वह पुरुष पलंग से भिन्न है। आहाहा! अभी यह पलंग बनाते हैं न, नये? नये काथी के करते हैं न? काथी सुना है न काथी? नया। हमारे रिवाज है यहाँ, पहले सोये नहीं आदमी, पहले कुत्ते को बैठावे, वहाँ रोटी डालकर कुत्ते को खिलावे तो फिर, बाद में सोवे। नहीं तो पहले सोवे तो वह अर्थी में सो गया कहलाये। यहाँ तो कहते हैं कि उस पलंग में सोनेवाला पुरुष, पलंग से अलग है, ले! आहाहा! आठ कर्म के सम्बन्ध में दिखता है, तथापि भगवान तो आठ कर्म से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा!

अरे रे! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर को क्या कहना है, यह सुनने को मिलता नहीं। अरे भाई! और सत्य बाहर आवे, तब उसका विरोध करते हैं कि यह तो एकान्त है, एकान्त है! करो प्रभु! तुम भगवान हो भाई! आहाहा!

**श्रोता :** जब सत्य बाहर आवे, तब सत्य को समझनेवाले होते ही हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होते हैं और विरोध करनेवाले भी होते हैं।

**श्रोता :** यह तो अनादि से है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह है, यह तो अनादि से है।

**श्रोता :** दोनों बातें अनादि से चली आती हैं, सत्य को माननेवाले और विरोध करनेवाले ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बहुत.. मार्ग ऐसा है भाई! पहले आत्मा और कर्म ये दोनों अत्यन्त भिन्न चीज है । आत्मा आठ कर्म बाँधे और आठ कर्म छोड़े, यह सब व्यवहार की व्याख्या है । कर्म उसके कारण बँधते हैं और उसके कारण छूटते हैं । आहाहा ! भगवान आत्मा चैतन्य के तेज से भरपूर प्रभु, इन आठ कर्मों से अत्यन्त भिन्न है । पलंग में सोया हुआ पुरुष पलंग से भिन्न है; इसी प्रकार आठ कर्म के सम्बन्ध में रहा, तथापि वह आठ कर्म से निराला / भिन्न है । आहाहा ! आठ काष्ठ के संयोग से भिन्न है । पलंग पर सोनेवाले पुरुष की भाँति, कर्मसंयोग से भिन्न.. कर्म का तो संयोग है; संयोग कहते ही भिन्न चीज है । संयोग कहने पर वह भिन्न चीज है । हैं ! आहाहा ! स्वभाव कहने पर, वह उससे (संयोग) भिन्न चीज है । आहाहा !

अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं । आठ कहे थे न ! ( इसी प्रकार अन्य किसी दूसरे प्रकार से कहा जाए... ) जिस प्रकार लोग कहते हों इससे विरुद्ध तो उसे समझ लेना कि यह तत्त्व से विरुद्ध है । ( वहाँ भी यही युक्ति जानना । )

**भावार्थ :** चैतन्यस्वभावरूप जीव, सर्व परभावों से भिन्न,.. सर्व परभाव-पुण्य-पाप, कर्म, शरीर सब ले लेना । भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर है; इसलिए अज्ञानी जैसा मानते हैं, वैसा नहीं है ।

कलश-३४

यहाँ पुद्गल से भिन्न आत्मा की उपलब्धि के प्रति विरोध करनेवाले (-पुद्गल को ही आत्मा जाननेवाले) पुरुष को (उसकी हितरूप आत्मप्राप्ति की बात कहकर) मिठासपूर्वक (समभाव से) ही इस प्रकार उपदेश करना-यह काव्य में बतलाते हैं-

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन

स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।

हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो

ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः॥३४॥

श्लोकार्थ-हे भव्य! तुझे [ अपरेण ] अन्य [ अकार्य-कोलाहलेन ] व्यर्थ ही कोलाहल करने से [ किम् ] क्या लाभ है? तू [ विरम् ] इस कोलाहल से विरक्त हो और [ एकम् ] एक चैतन्यमात्र वस्तु को [ स्वयम् अपि ] स्वयं [ निभृतः सन् ] निश्चल लीन होकर [ पश्य षण्मासम् ] देख; ऐसा छह मास अभ्यास कर और देख कि ऐसा करने से [ हृदय-सरसि ] अपने हृदय सरोवर में, [ पुद्गलात् भिन्नधाम्नः ] जिसका तेज, प्रताप, प्रकाश पुद्गल से भिन्न है, ऐसे उस [ पुंजः ] आत्मा की [ ननु किम् अनुपलब्धिः भाति ] प्राप्ति नहीं होती है [ किं च उपलब्धिः ] या होती है?

भावार्थ - यदि अपने स्वरूप का अभ्यास करे तो उसकी प्राप्ति अवश्य होती है; यदि परवस्तु हो तो उसकी तो प्राप्ति नहीं होती। अपना स्वरूप तो विद्यमान है, किन्तु उसे भूल रहा है; यदि सावधान होकर देखे तो वह अपने निकट ही है। यहाँ छह मास के अभ्यास की बात कही है, इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इतना ही समय लगेगा। उसकी प्राप्ति तो अन्तर्मुहूर्तमात्र में ही हो सकती है, परन्तु यदि शिष्य को बहुत कठिन मालूम होता हो तो उसका निषेध किया है। यदि समझने में अधिक काल लगे तो छह मास से अधिक नहीं लगेगा; इसलिए यहाँ यह उपदेश दिया है कि अन्य निष्प्रयोजन कोलाहल का त्याग करके इसमें लग जाने से शीघ्र ही स्वरूप की प्राप्ति हो जाएगी-ऐसा उपदेश है॥३४॥

कलश - ३४ पर प्रवचन

यहाँ पुद्गल से भिन्न आत्मा की उपलब्धि के प्रति विरोध करनेवाले ( -पुद्गल को ही आत्मा जाननेवाले ) पुरुष को ( उसकी हितरूप आत्मप्राप्ति की बात कहकर ) मिठासपूर्वक ( समभाव से )... उसे प्रेम से उसे समझाते हैं। भाई! तू यह क्या करता है? पुण्य और पाप के भाव जीव के हैं? तू क्या करता है प्रभु! यह तुझे.. उसे मिठास से कहते हैं-प्रेम से कहते हैं। आहाहा! श्रीमद् में आता है न? 'कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्क ज्ञान में कोई, माने मारग मोक्ष का करुणा उपजै जोई'-करुणा उत्पन्न होती है, द्वेष नहीं करे। आहाहा! उसके प्रति द्वेष नहीं करे, विरोध नहीं करे। अरे रे! क्या हो? भाई! तू यह क्या

करता है ? आहाहा ! शुभभाव, वह जड़ का फल, उसे आत्मा का कर्म तू माने, भाई ! और उससे धर्म हो.. भगवान ने तो उस शुभभाव को अजीव और जड़ कहा है । प्रभु ! तू यह क्या करता है ? इस प्रकार मिठासपूर्वक उसे समझाते हैं । आहाहा ! जगत् में 'सत्वेसु मैत्री' सब भगवान जीव है, किसी के प्रति मैत्री न जाये, कोई कैसा भी विरोधी दृष्टिवाला हो परन्तु उसके प्रति मैत्री न जाये । वह जीवद्रव्य है न ? जीवद्रव्य, वह साधर्मी द्रव्य है, आहाहा ! - ऐसी बात है । उसे यहाँ मिठासपूर्वक - है न ? ( समभाव से ) ही इस प्रकार उपदेश करना—यह काव्य में बतलाते हैं ।

हे भव्य जीव ! तुझे अन्य व्यर्थ ही कोलाहल करने से.. वह अकार्य है, विकल्प आदि कार्य तेरा नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! यह मिथ्यात्व के परिणाम, वह तेरा कार्य नहीं है । अकार्य कोलाहल, तेरे कार्य से प्रभु वह अकार्य का कोलाहल है । आहाहा ! आहाहा ! प्रेम से उसे कहते हैं । प्रभु ! तू चैतन्यमूर्ति है न नाथ ! आहाहा ! आनन्द का नाथ प्रभु तू अन्दर है । वह इन पुण्य और पाप के भाव को तेरा मानता है, वह अकार्य है; वह तेरा कार्य नहीं है । आहाहा ! 'अकार्य-कोलाहलेन' इस अकार्य कोलाहल से बस हो, बस हो । आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है । प्रभु ! तू उसे यह रागवाला और पुण्यवाला मानता है, प्रभु ! तू यह क्या करता है ? इस अकार्य कोलाहल में तू कहाँ पड़ा ? आहाहा ! अन्दर भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है न, भाई ! उसे इस दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य के विकार के ( परिणाम ), ये मेरे ( ऐसा ) मानकर उस प्रभु ने ! यह अकार्य कोलाहल, वह कार्य तेरा नहीं, उस कोलाहल में तू गिर गया है । आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है । है ? 'अकार्य-कोलाहलेन' अकार्य अर्थात् व्यर्थ का, कोलाहल अर्थात् यह पुण्य मेरा है और दया, दान के विकल्प मेरे हैं, यह अकार्य कोलाहल है, यह कार्य तेरा नहीं है । 'अकार्य-कोलाहलेन' आहाहा ! प्रभु ! यह छोड़ दे तू । तेरा नाथ अन्दर चैतन्य आनन्दस्वरूप विराजता है, उसे तू मान और उसे तू जान, बाकी ऐसे ये परिणाम-विकार को अपना मानकर अकार्य कोलाहल व्यर्थ का कोलाहल तू कर रहा है । विशेष कहेंगे ।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )